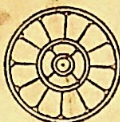
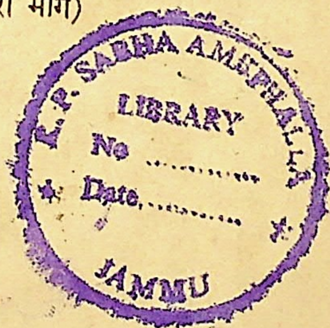
161

49

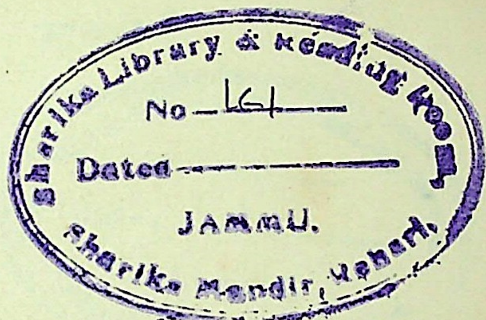


मातृवाणी

(दूसरा भाग)

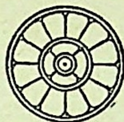






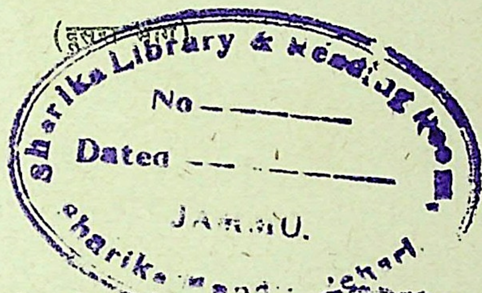


Ru 15/5/52 -/8/-

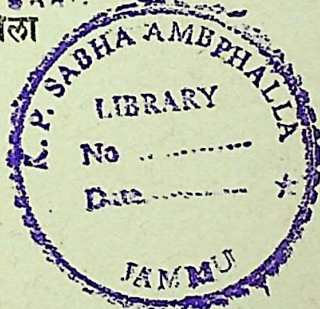


मातृवाणी

(दूसरा भाग)



श्रीअरविन्द-ग्रंथमाला
पांडीचेरी
१९४९



अनुवादक और प्रकाशक—चंद्रदीप
श्रीअरविंद-ग्रंथमाला, पांडीचेरी

प्रथम संस्करण १५००
मूल्य ।।) आठ आना

मुद्रक
श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडीचेरी
627--49--1500

विषय-सूची

"उन सब लोगोंके लिये भागवत कृपा और भागवत साहाय्य सर्वदा ही विद्यमान हैं जो उनके लिये अभीप्सा करते हैं; और जब उन्हें श्रद्धा-भक्ति और पूर्ण विश्वासके साथ ग्रहण किया जाता है तब उनकी शक्ति अनंत होती है।"

१

प्रेम

निस्संदेह वही सुखी है जो भगवान्‌को प्यार करता है, क्योंकि भगवान् सर्वदा उसके साथ रहते हैं।

७-३-३७

*

अधिक एकान्तभावसे भगवान्‌के प्रेमकी ओर झुको। जब मनुष्य भगवत्प्रेमको ग्रहण करता है तब भला उसके लिये किसी मानवप्रेमका क्या मूल्य हो सकता है?

२-९-३९

मानव-प्रेमके पीछे बराबर ही एक प्रकारका तीखा स्वाद लगा रहता है---एकमात्र भगवत्प्रेम ही ऐसी चीज है जो कभी निराश नहीं करती।

५-५-४५

*

तुम्हारी अभीप्साकी सच्चाई ही वह चीज है जिसके उत्तरमें अपने-आप दिव्य प्रेम प्रकट होता है।

२०-१०-३४

*

समत्वकी गभीर शांतिके अंदर प्रेम वर्द्धित होगा और अटूट शुद्ध एकत्वके बोधके अंदर अपने पूर्ण विकासको प्राप्त होगा।

५-१०-३४

*

सच्चा प्रेम और आत्मदान किसी कष्टसाध्य तपस्याकी अपेक्षा बहुत अधिक शीघ्रतासे भगवान्‌तक ले जाते हैं।
२६–४–३७

*

चैत्य केंद्रकी चेतनामें निवास करो; ऐसा करने-पर तुम्हारी इच्छा एकमात्र भगवान्‌की इच्छाको ही प्रकट करेगी और तुम्हारी रूपांतरित सत्ता भगवत्प्रेम-को ग्रहण करने और अभिव्यक्त करनेमें समर्थ होगी।
२५–९–३४

*

मंदिरके अत्यंत गभीर प्रदेशमें चले जाओ और वहाँ तुम मुझे वर्तमान पाओगे।
११–२–३८

२

स्थिरता-समता-उद्घाटन

पहला पग है पूर्ण स्थिरता और समत्व।

२८-९-३७

*

अचंचलता और शांतिके अंदर ही कोई यह जान सकता है कि उसके लिये करणीय सबसे अच्छी बात क्या है।

३-११-३७

*

विशाल शांति और स्थिरता वहां विद्यमान हैं, प्रस्तुत हैं जिसमें कि तुम उनकी ओर अपने-आपको खोलो और उन्हें ग्रहण करो।

११-९-३७

*

एकमात्र बाहरी परिस्थितियां ही ऐसी चीजोंसे अस्तव्यस्त हो सकती हैं। तुम अपनी इन परिस्थितियोंसे पीछे हटनेकी कोशिश करो और अपने भीतरकी शांतिको प्राप्त करो। वह शांति बराबर ही इन सब चीजोंसे अलग—अछूती रहती है।

१४–११–३७

*

तुम्हारे ऊपर और तुम्हारे अंदर जो चेतना काम कर रही है उसकी ओर अपने-आपको खोलो और बराबर ही उतना अचंचल और शांतिपूर्ण बनाये रखो जितना बनाये रखना तुम्हारे लिये संभव हो।

*

बराबर अचंचल, स्थिर और शांत बने रहो

और अपनी चेतनाके अंदर दिव्य शक्तिको पूर्ण एक-निष्ठताकी उज्वलताके द्वारा कार्य करने दो।

६-६-३७

*

भागवत चेतना तुम्हें रूपांतरित करनेके लिये कार्य कर रही है; तुम्हें उसकी ओर अपने-आपको खोलना होगा जिसमें कि वह खुले तौरपर तुम्हारे अंदर कार्य कर सके।

१७-१०-३७

*

आत्मपीड़नके द्वारा दिव्य ज्योतिकी ओर उद्-घाटन नहीं किया जा सकता।

१२-६-३९

*

मैं केवल अज्ञान, अचेतनता और अहंकारकी सीमाओंकी ही आहुति देनेके लिये कह रही हूं—पर कितने अद्‌भुत अतुलनीय लाभके लिये !

५–७–३७

*

तुम्हारा मन अत्यधिक सक्रिय—चंचल है। मेरी इच्छाके अनुसार सहज भावसे तुम्हारे परिचालित होनेके मार्गमें यह बाधा डालता है।

२–९–३७

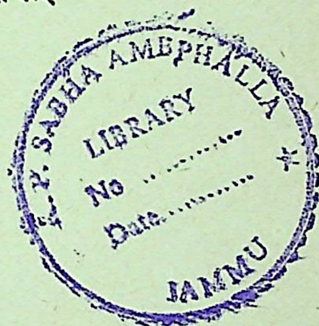
*

अपने शरीरमें एक महत्तर शांति और स्थिरता-को स्थापित करो; ऐसा करनेसे तुम्हें बीमारीके आक्रमणोंका समना करनेके लिये शक्ति प्राप्त होगी।

२२–१०–३५

२

श्रद्धा–धैर्य–सच्चाई



सब कुछ निर्भर करता है श्रद्धा-विश्वासकी तीव्रता और समुचित मनोभावकी दृढ़ताके ऊपर।

३०–५–३५

*

धैर्य और लगनके साथ करनेपर सभी प्रार्थनाएं पूरी कर दी जाती हैं।

४--२–३८

*

अपनी अभीप्सापर दृढ़ बने रहो और वह पूरी होकर ही रहेगी।

१२–९–३४

*

तुम्हें अपनी अभीप्साको अटूट बनाये रखना चाहिये और अपने प्रयासमें धैर्यके साथ लगे रहना चाहिये—और फिर तुम्हारी सफलता निश्चित है।

८-५-३७

*

अचल-अटल बने रहो और धैर्य मत खोओ—फिर सब कुछ ठीक हो जायगा।

२२-५-३४

*

भगवान्‌की कृपाशक्ति, संकल्पशक्ति और क्रिया-के ऊपर पूर्ण श्रद्धा-विश्वास बनाये रखना जारी रखो और फिर सब कुछ ठीक हो जायगा।

६-११-३४

*

प्रत्येक चीज अपने समयपर आयेगी; विश्वास-पूर्ण धैर्य बनाये रखो और फिर सब कुछ ठीक हो जायगा।

९-८-३४

*

भय मत करो, तुम्हारी सच्चाई तुम्हारी रक्षिका है।

२२-११-३४

*

यह बात बराबर ही अधिक अच्छी है कि प्रवचनोंको, विशेषकर तथाकथित आध्यात्मिक विषयोंपर दिये गये प्रवचनोंको न सुना जाय। प्रत्येक आदमीको बस अपने ही पथका अनुसरण करना चाहिये और उसके साथ दूसरोंका कोई संबंध नहीं है।

९-१-३८

४

कर्म

जिस मनोभावसे तुम काम करते हो उसीपर सब कुछ निर्भर करता है। अगर कर्म समुचित मनोभावके साथ किया जाय तो वह निश्चय ही तुम्हें मेरे अधिक समीप ले आयेगा।

१७-५-३७

*

सच्चे भावके साथ किया हुआ कर्म ध्यान ही है।

१५-९-३४

*

कर्मके विषयमें बहुत अधिक परेशान मत होओ; तुम जितनी ही अधिक अचंचलता और शांतिके साथ

इसे करोगे उतना ही अधिक वह फलदायक होगा।

२९-७-३५

*

साधारण नियमानुसार यह बराबर ही अधिक अच्छा है कि जो चीजें हमारे अपने कार्यके दायरेके भीतर न पड़ें, उनमें कोई हस्तक्षेप न किया जाय।

७-१०-३७

*

कर्ममें जो कठिनाइयां आती हैं वे परिस्थितियों-से या बाहरी तुच्छ घटनाओंसे नहीं आतीं, बल्कि वे आंतरिक भाव (विशेषकर प्राणगत भाव) की किसी चीजसे आती हैं जो अनुचित होता है---जैसे, अहंकार, महत्त्वाकांक्षा, कर्मके विषयमें मानसिक धारणाओंकी कठोरता इत्यादि-इत्यादि। और यह

बराबर ही कहीं उत्तम है कि असामंजस्य—बेमेलपन-को दूर करनेके लिये उसके कारणको दूसरे या दूसरोंके भीतर खोजनेकी अपेक्षा स्वयं अपने भीतर खोजा जाय।

१९–४–३८

५

कठिनाइयां और दुःख-कष्ट

अगर तुम अपने श्रद्धा-विश्वासको अचल-अटल बनाये रखो और अपने हृदयको सर्वदा मेरी ओर खोले रखो तो सभी कठिनाइयां, चाहे वे जितनी भी बड़ी क्यों न हों, तुम्हारी सत्ताकी महत्तर पूर्णता-को सिद्ध करनेमें सहायता पहुंचायेंगी।

१९-४-३७

*

तुम्हारे लिये मेरा संदेश यह है : दुःख-कष्टका पोषण मत करो और दुःख-कष्ट तुमको एकदम छोड़ देगा। दुःख-कष्टका होना कभी उन्नतिके लिये अनि-वार्य नहीं हो सकता। सबसे महान् उन्नति सुदृढ़

और सुप्रसन्न समभावके द्वारा ही की जाती है।
१०-८-३२

*

जब कोई भूल हो जाय तो बराबर ही उसका उपयोग उन्नतिके एक साधनके रूपमें करना चाहिये। एक बार जब आवश्यक परिवर्तन पूरा हो जाता है तब भूल-भ्रांति और उसका कारण दूर हो जाता है और फिर वह दुबारा नहीं आ सकती।
६-४-३७

*

वस्तुस्थिति जैसी होनी चाहिये वैसी अगर न भी हो तो भी उसके लिये परेशान होनेसे उसे और अच्छा बनानेमें कोई सहायता नहीं मिलती। धीर-

स्थिर विश्वास ही शक्तिका मूल स्रोत है।
११-११-३६

*

हां, जो हो, इस पृथ्वीपर जिस कार्यको हमें परिपूर्ण करना है उसके साथ यदि मुकाबला किया जाय तो इन सब तुच्छ बाहरी चीजोंका बहुत कम महत्त्व रह जाता है।
२९-९-३७

*

इन छोटी-छोटी भौतिक असुविधाओंको भी अपनी उन्नतिको तीव्र गतिसे आगे बढ़ानेके कार्यमें व्यवहार करने योग्य बनाया जा सकता है। इन सब प्रतिरोधोंका घर अवचेतनाके अंदर है। हमें

सज्ञान संकल्पके साथ उसके अंदर पैठना चाहिये और अर्द्ध-चेतन जड़तत्त्वके अंदर भी भगवान्‌का विधान स्थापित करना चाहिये।

२-२-३८

३४

६

भोजन और निद्रा

साधकको अपने शरीरकी क्षुधाके लिये आवश्यक होनेके कारण भोजन करना चाहिये और अपने लोभकी मांगोंके कारण नहीं करना चाहिये।

४–४–३७

*

आवश्यकता इस बातकी है कि भोजनके लिये रसनाका जो लोभ और वासना है, उसकी आसक्तिसे मुक्त होनेका एक आंतरिक भाव हम प्राप्त करें; भोजनकी मात्राको अनुचित रूपसे कम कर देने या अर्द्ध-बुभुक्षु अवस्थामें रहनेकी आवश्यकता नहीं। शरीर और उसकी शक्ति और उसके स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये जितना भोजन पर्याप्त हो उतना

भोजन हमें अवश्य ग्रहण करना चाहिये पर करना चाहिये आसक्ति या वासनासे रहित होकर।

२७–४–३७

*

शरीरकी वर्तमान अवस्थामें निद्रा अनिवार्य है। अगर हम धीरे-धीरे अपनी अवचेतनाके ऊपर अपना अधिकार स्थापित करें तो हम अपनी निद्राको अधिकाधिक सचेतन बना सकते हैं।

२५–१–३८

*

यह वात मैं अनुभवसे जानती हूं कि भोजन कम कर देनेसे निद्रा सचेतन नहीं होती; शरीर चंचल हो जाता है पर किसी हदमें इससे उसकी

चेतना नहीं बढ़ती। केवल अच्छी, गभीर और अचंचल निद्राके अंदर ही मनुष्य अपने गभीरतर भागके साथ संस्पर्श स्थापित कर सकता है।

४-८-३७

७

वार्षिक प्रार्थनाएं

१९४६

हे प्रभु! तेरी शान्तिको हम चाहते हैं, शान्तिकी किसी छायामूर्तिको नहीं; तेरी स्वतन्त्रताको हम चाहते हैं, स्वतन्त्रताकी किसी छायामूर्तिको नहीं; तेरी एकताको हम चाहते हैं, एकताकी किसी छायामूर्तिको नहीं। कारण एकमात्र तेरी शान्ति, तेरी स्वतन्त्रता और तेरी एकता ही उस अन्धी उद्दण्डता, छल-कपट और मिथ्याचारको जीत सकती हैं जो अभीतक पृथ्वीपर राज्य कर रहे हैं।

हे नाथ! जिन लोगोंने तेरी विजयके लिये इतनी बहादुरीके साथ युद्ध किया है और दुःख भोगा है, वे इस विजयके वास्तविक परिणामोंको इस जगत्में प्रस्थापित होते हुए देखें।

१९४७

जिस समय सभी चीजें बुरीसे और अधिक बुरी अवस्थाकी ओर जाती हुई प्रतीत होती हैं, ठीक उसी समय हमें अपनी महत् श्रद्धाका परिचय देना चाहिये और यह जानना चाहिये कि भगवत्कृपा कभी हमारा साथ नहीं छोड़ेगी।

*

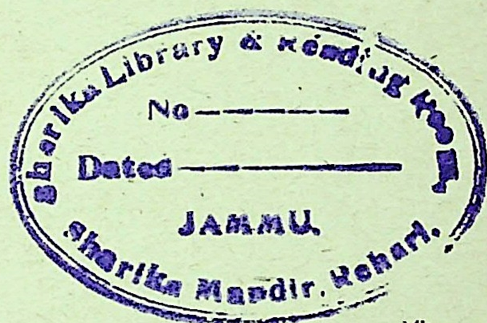
१९४८

बढ़ते चलो, निरन्तर बढ़ते चलो !
सुरंगके अन्तमें है ज्योति ....
युद्धके अन्तमें है विजय !

*

१९४९

हे प्रभु ! नये वर्षकी देहलीपर खड़ी होकर मैंने तुझसे पूछा कि इस बार मैं क्या कहूं। तूने मुझे दो विपरीत दिशाओंमें दो चरम संभावनाएं दिखा दीं और आदेश किया—मौन रह।



अमेरिकाके लिये

संदेश

"यह समझना छोड़ दो कि तुम पश्चिमके हो और दूसरे पूर्वके हैं। सभी मनुष्य एक ही दिव्य मूलसे आये हैं और उस मूलके एकत्वको पृथ्वीके ऊपर अभिव्यक्त करना ही सबके जीवनका उद्देश्य है।"

४-८-४९

